संपादकीय

शांति का सम्मोहन और गीता का संदेश

अंतराष्ट्रीय तनाव, संघर्ष, हिंसा और युद्ध के विरुद्ध जागरूकता फैलाने के निमित्त संयुक्त राष्ट्र द्वारा 1982 ई. से 'विश्व शांति दिवस' मनाने की परिपाटी शुरू की गई, लेकिन तब इसके लिए सितंबर महीने का तीसरा मंगलवार नियत था। 2002 ई. से 21 सितंबर का दिन विश्व शांति के लिए निश्चित किया गया। पूर्व में राजतंत्रीय और औपनिवेशिक शासन की आधारशिला सामान्यतः लड़ाइयों पर ही टिकी रही और अपना विस्तार लेती रही। लोकतांत्रिक और साम्यवादी सरकारों के गठन के साथ वैश्विक शांति का स्वप्न सँजोया तो गया, परंतु इनसे भी शांति स्थापित नहीं हो पाई; उल्टे अंदरुनी अशांति जो थी, वह तो थी ही; विश्व युद्ध और शीत युद्ध की पीठिका पर जल, थल, वायु क्षेत्र युद्ध की तैयारी और आशंका में अशांत एवं तनावग्रस्त हो गए। आपसी प्रतिद्वंद्विता के कारण हथियारों की होड़ में चंद देशों ने परमाणु बमों का इतना जखीरा इकट्ठा कर लिया, जिससे पूरी पृथ्वी के जनजीवन का अनेक बार संहार हो सकता है। यह अलग बात है कि शक्ति संतुलन खासकर परमाणविक शक्ति संपन्नता चिर प्रतिद्वंद्वियों में टकराव रोकने में भी बड़ा कारक साबित हुई, किंतु यह भयानक विध्वंसक सिरफिरे सरकारों-शासकों के हाथों इस्तेमाल नहीं हो पाएगा - इसकी गारंटी कौन ले सकता है? फलस्वरूप, एक जिम्मेदार संस्था होने के नाते संयुक्त राष्ट्र का इस दिशा चिंतित होना स्वाभाविक था। शांति के प्रति राष्ट्रों व उनकी सरकारों को उत्तरदायी बनाने हेतु 'विश्व शांति दिवस' का आयोजन किया जाता है।

निस्संदेह, 'विश्व शांति दिवस' की पृष्ठभूमि इतनी-सी है, पर युद्ध और शांति की समस्या चिर-शाश्वत है, शांति की चाहना संसार की रचना जितनी पुरानी है। अतएव सृष्टि-सृजन के आदि-आधार परमसत्ता की आराधना के स्त्रोत की शुरुआत ही 'शान्ताकारं भुजगशयनम् पद्मनाभम् सुरेश्वरम्' से होती है, जिसका अर्थ है कि जो अपनी आकृति में नितांत शांत-स्थिर है और शेषनाग पर अवस्थित है, उस श्रीहरि को बारंबार प्रणाम है। ईश्वर का शांत होना उसका सर्वश्रेष्ठ व पहला गुण-धर्म है। वह सर्वव्यापक जगदीश्वर स्वयं में शांत, सनातन, अप्रमेय है तथा जीवों को परमशांति प्रदान करता है -'शान्तम् शाश्वतमप्रमेयमनघम् निर्वाण शान्तिप्रदम्।' स्पष्ट है कि जो सद्, चित् और आनंदमय है, वह परम शांत भी है; परम शांत होने के कारण ही सत्, चित्, आनंदमय है। शांति श्रेय और प्रेय है, क्योंकि अशांति में न तो सत्य, शिवत्व, सुंदरता की प्राप्ति संभव है और न ही इनके संधान की कोई संभावना बचती है। इस प्रकार शांति ही सत्य, कल्याणकारक और सुंदर है। जीवन नाना भाँति की बेचैनियों की मृग-मरीचिका है, अतः संसार अशांति का दूसरा पर्याय है। आदमी शांति की तलाश में व्याकुल है, क्योंकि परमसत्ता से इतर वास्तविक शांति का कोई और ठौर-ठिकाना नहीं। जिसका मन शांत व निष्पाप है और जिसका रजोगुण शान्त हो गया है, उस सच्चिदानंद ब्रह्म के साथ एकत्व भाव बनाए हुए योगी को उत्तम आनंद प्राप्त होता है, अशांत चित्त वहीं स्थिर-शांत होकर सुकून पाता है -

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।

उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकलमषम्।।

यह शांति मानसिक, हार्दिक, बौद्धिक कामनाओं के शांत होने पर सुलभ होती है। जिनकी कामनाएँ शांत नहीं हुई हैं, किंतु देह का अंत हो जाता है, उन्हें भी 'शांत होना' ही कहा जाता है, क्योंकि जब तक शरीर चलता है, वह किसी न किसी रूप में अशांत रहता है। जीते जी शरीर, मन और आत्मा कैसे शांत हो - इसका उपाय श्रीकृष्ण ने बताया है कि संशयरहित होकर तथा लज्जा, भय, मान, आसक्ति आदि को त्यागकर परमेश्वर की शरण में जाने से परमशांति और परमधाम की प्राप्ति होती है -

तमेवं शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।

लौकिक जीवन की सफलता भी शांति की स्थिरता पर निर्भर है। अशांति के क्षणों में जीवन का कोई भी सुख-आनंद फलितार्थ नहीं हो पाता। भगवद्गीता के अनुसार, मन और इन्द्रियों पर लगाम न लगाने वाले व्यक्ति में निश्चयात्मिका-संशयहीन बुद्धि नहीं होती, उसके अंतःकरण में भावना भी नहीं होती। भावनाहीन मनुष्य को शांति नहीं मिलती और शान्तिरहित को सुख-चैन कैसे मिल सकता है -'ना चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्।' इसका लाक्षणिक उपचार भी बतलाया गया है कि जो व्यक्ति संपूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममतारहित, अहंकाररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शांति को प्राप्त होता है अथवा वह शांति को प्राप्त है -

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति।।

शांति उदात्त व विराट भाव-स्थिति है। असत्य के समांतर सत्य, शोक के समांतर हर्ष की तरह अशांति के समांतर शांति की सत्ता को समझना आसान तो है, लेकिन शांति अशांति का अभाव मात्र नहीं है। अशांति का कारक किसी वस्तु का अभाव और उसकी उपस्थिति व आधिक्य दोनों समान रूप से हो सकता है, इसलिए इच्छा और उसकी पूर्ति तक शांति सीमित नहीं है; अभीप्सा के पूरे न होने पर भी शांत रहने अथवा व्यग्र न होने पर शांति उपलब्ध होती है। दुखों में उद्विग्न न होना और सुखों की प्राप्ति में इच्छा-स्पृहारहित हो जाना स्थिरचित्त शांत व्यक्ति की पहचान है -'दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः। वीतराग भयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।' मानसिक शांति का उपक्रम बताते हुए गीता में कहा गया है कि इसमें संदेह नहीं कि मन चंचल और कठिनता से वश में होता है, परंतु निरंतर अभ्यास और वैराग्य से वह वश में हो सकता है -

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।

शांत लोगों के द्वारा ही सामाजिक शांति स्थापित हो सकती है, किंतु व्यवहार में प्रायः कथित सामूहिक शांति के भीतर वैयक्तिक भय, असंतोष, द्वेष, शोक, दुख, पिपासाएँ, उत्तेजनाएँ, लिप्सा, संशय, उद्वेग, प्रलाप अंतर्निहित रहते हैं। इस प्रकार यह नाना प्रकार की व्याकुलताओं से आच्छादित शांति वास्तविक शांति नहीं है। वैश्विक शांति की यह भारी विडंबना और अंतर्द्वंद्व है। सार्वजनिक स्तर पर इसकी सैद्धांतिकी और व्यावहारिकी हिंसा, अन्याय, युद्ध के प्रतिलोम के तौर पर गढ़ी गई

है। युद्ध और हिंसा का विकल्प भी अंततः शांति ही है। युद्ध में सारे पक्ष कुछ न कुछ हारते हैं, शांति में सब कुछ न कुछ जीतते हैं और थोड़ा-बहुत सबका अहं भी विसर्जित होता है। कई बार युद्ध इसलिए होते हैं, ताकि शांति से रहा जा सके। शांति सदैव कठिन-दुसाध्य होती है और युद्ध आसान, इसलिए युद्ध हो जाता है। इसमें निरा जड़-मूर्ख भी प्रवृत्त हो सकते हैं, लेकिन शांति के लिए मन, इंद्रिय, राग-द्वेष, हर्ष-विषाद पर विजय पाना होता है, जो सबके वश की बात नहीं होती; बड़े-बड़े ज्ञानियों के लिए भी सहज नहीं। उदाहरणस्वरूप, महाभारत युद्ध से ठीक पहले श्रीकृष्ण जब शांतिदूत बनकर हस्तिनापुर जा रहे थे, तो भीम ने दुर्योधन-दुःशासन के लहू पीने की अपनी प्रतिज्ञा की याद दिलाई। उस समय श्रीकृष्ण ने यही उत्तर दिया था कि कोई प्रतिज्ञा शांति से अधिक श्रेयस्कर नहीं हो सकती, इसलिए उसके टूटने पर भी शांति स्थापित होती है तो होनी चाहिए। दूसरी ओर, भीष्म पितामह ने अपने अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा न तोड़कर और अंबा से विवाह करने का प्रस्ताव न मानकर परशुराम से युद्ध करना बेहतर समझा। स्वयं श्रीकृष्ण ने शस्त्र न उठाने का अपना वचन एक तरफ रखकर कुरुक्षेत्र के मैदान में भीष्म-वध के लिए सुदर्शन चक्र का आधान कर लिया था। इस प्रकार युद्ध और शांति का प्रश्न इतना जटिल है कि यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि कहाँ युद्ध होना चाहिए और कहाँ नहीं होना चाहिए? और जहाँ नहीं होना चाहिए, वहाँ भी होता है, इसलिए युद्ध का औचित्य तलाशना पड़ता है और जॉन एफ. केनेडी के तर्कों को दुहराया जाता है कि 'जो व्यक्ति शांतिपूर्ण परिवर्तन को असंभव बना देते हैं, वे हिंसक क्रांति को अपरिहार्य बना देते हैं।'

लोकतंत्र, मार्क्सवाद, वैश्वीकरण, मुक्त व्यापार, बाजारवाद, शक्ति संतुलन, अहस्तक्षेपवाद, स्व-अनुशासन, सामूहिक अर्थव्यवस्था और इन सबसे ऊपर धर्म-मार्ग भी स्थायी शांति स्थापित करने में विफल रहे हैं। इनके खुद के वजूद की रक्षा के लिए भी युद्ध होते रहे हैं, तो इसका कारण है कि व्यक्ति व समाज अंतर्द्वंद्व से ग्रस्त है और दूसरा, युद्ध दुतरफा होता है यानी भीतर द्वंद्व और बाहर द्वंद्व दोनों युद्ध की आग में घी डालने का काम करते हैं। इसलिए सनातन संस्कारों में शांति की कामना मनुष्य तक ही सीमित नहीं रखी गई, वरन् संपूर्ण चराचर जगत को इसके अंतर्गत समेटा गया। सभी तत्वों के संतुलन, सामंजस्य तथा शांति की कामना वेद-ऋचाओं का अभिप्रेत है -

ॐ द्यौः शान्तिः अन्तरिक्षः शान्तिः
पृथिवी शान्तिः आपः शान्तिः
ओषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिः
विश्वदेवाः शान्तिः ब्रह्म शान्तिः
सर्वं शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।